द्वितीय अध्याय

"मिश्रजी के नाट्य-साहित्य का परिचय"

द्वितीय अध्याय

"मिश्रजी के नाट्य-साहित्य का परिचय"

लक्ष्मीनारायण मिश्र - जीवनवृत्त

अ· **जन्म तथा परिवार :-**

बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न लक्ष्मीनारायण मिश्र का जन्म सन् 1903 ई में उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ जिले के बस्ती नामक ग्राम में हुआ। इसके पिता पं·कमलाप्रसाद मिश्र एक उच्च कुलीन व्यक्ति माने जाते थे। इनकी माता सहोदरादेवी धर्मपरायण हिन्दू नारी थी। इनकी पौराणिक गाथाओं का प्रभाव मिश्रजी के बालमन पर हुआ, और भारतीयता के प्रति आपकी अटूट आस्था बनी रही।

मिश्रजी का विवाह सन् 1923 ई·में श्रीमती रामदुलारी देवी के साथ हुआ। इनके चार पुत्रों के नाम हैं - विश्वंभरनाथ मिश्र, हरींद्रनाथ मिश्र, कवींद्रनाथ मिश्र और रविंद्र। किंतु दुर्भाग्य की बात यह कि 26 साल की आयु में मिश्रजी तीन बार बीमार पडे। जीवन के यौवन काल में ही आप पर अनेक आघात हुये। सन् 1930 में पिता की असामायिक मृत्यु, सन् 1935 में अनुज की निर्मम हत्या और सन् 1936 ई·में धर्मपत्नी का अकाल देहावसान आदि घटनाओं के कारण उनका हृदय कमजोर बन गया तथा स्वास्थ काफी बिगड़ गया। इन आघातों का अच्छा-बुरा प्रभाव आपकी लेखनी पर पडा।

ब· **बचपन, शिक्षा तथा साहित्यिक प्रेरणा :-**

मिश्रजी अपने पिता की इकलौती संतान होने से उनका बाल्य-काल बहुत ही लाड-प्यार में बीता। बचपन में स्कूल दूर होने से घर पर ही शिक्षा लेते

रहे। हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त करते समय आपके सहपाठियों में पं·कमलापति त्रिपाठी, डा·जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पांडेय बेचन शर्मा, "उग्र" श्री·दुर्गादत्त त्रिपाठी आदि थे। इन्हीं के प्रेरणा से मिश्रजी ने साहित्य का निर्माण किया। सन् 1928 में आपने राजनीति, इतिहास और अँग्रेजी साहित्य के साथ बी·ए· की परीक्षा पास की। उसके उपरान्त प्रयाग से एल·एल·बी· की शिक्षा पूर्ण की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से कानून में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। स्वाभिमानी होने से नौकरी न कर वकालत प्रारंभ की किंतु आप की साहित्यिक रुचि कम नहीं हुई। राष्ट्रीय-विचार धारा के प्रबल समर्थक मिश्रजी को सन् 1942 के आंदोलन में भाग लेने के कारण, देशद्रोह के अपराध में जेलयात्रा करनी पडी, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य चिन्तन में हुई। सन् 1945 से प्रयाग में रहकर पुनः अपनी साहित्य साधना प्रारंभ की। बचपन से ही आपको भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठा रही। इसी कारण उनकी साहित्यिक कृति में भारतीय संस्कृति की प्रधानता दिखाई देती है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होते हुये भी वे परम्परावादी बने रहें। हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

बचपन से ही मिश्रजी का पढ़ने की ओर लगाव था। मनोविज्ञान, इतिहास, कलाशास्त्र, दर्शन, समाजशास्त्र की अध्ययन वे करते रहे। वेद, गीता, उपनिषद, श्रीमद्भागवत संस्कृत और भाषा के काव्यग्रथ, पंतजलि का योग सूत्र और वात्स्यायन का काम सूत्र आदि गंथो का इसपर प्रभाव है। अध्ययन और चिन्तन के कारण ही भारतीय जीवन प्रणाली का रूप आप में स्थिर हो गया है।

साहित्य सृजन की लगन विद्यार्थी काल में होने से स्फुट, मुक्तक तथा लेख के रूप में मिश्रजी की रचना 'प्रभा,' 'सरस्वती' और 'ईंदु' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। इसी समय आपने "अंतर्जगत" नामक छायावादी काव्य और "अशोक" नाटक की रचना की।

इस तरह आरंभ में मिश्रजी छायावादी कवि रहे। इन्टर की माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करते हुए आपने "अशोक" नाटक की रचना की। कॉलेज के जीवन में

12456
A

भारतीय एवं विदेशी साहित्य के विविध ग्रंथों का अध्ययन किया। इस कारण उनके मस्तिष्क में भारतीय जीवन प्रणाली का वैज्ञानिक एवं तर्क सम्मत रूप स्थिर होने लगा। उन्होंने अनुभव किया कि हमारा नवयुवक समाज पश्चिम के अन्धानुकरण में पतन की ओर जा रहा है। तभी उन्होंने 'संन्यासी' नाटक की रचना बी.ए. के शिक्षण काल में ही कर दी। युवावस्था में मिश्रजी के हृदय में राष्ट्र चेतना कितनी गहरी थी स्वतंत्रता की कितनी उत्कट अभिलाषा थी यह 'सन्यासी' नाटक के राजनीतिक प्रसंगों से स्वयं मुखरित हो उठा है। उसके उपरान्त मिश्रजी ने 'राक्षस का मंदिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', और 'आधीरात' आदि पाँच सामाजिक समस्या नाटक लिखे। इसी बीच उनके भाई एवं पत्नी चल बसी। इस आघात को मिश्रजी सहन न कर सके। उनके आकर्षण अनुराग और कर्म के मानी सभी स्त्रोत सूख गए। सन 1934 से 1946 तक के 12 वर्ष की लम्बी अवधि बीतने पर 'नारद की वीणा' नाटक लिखा। इस प्रकार 12 वर्ष के लिए हिन्दी साहित्य उनकी प्रतिभा से वंचित रहा। इसके पश्चात मिश्रजी ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक तथा जीवनी-मूलक नाटक लिखे।

इस तरह साहित्य-सृजन की सहज प्रतिभा के कारण 11-12 वर्ष से ही भावुक कवि रहने से प्रथम काव्य का निर्माण किया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वस्थ दृष्टिकोण को खोजने की चाह मिश्रजी में प्रारंभ से रहने के कारण विभिन्न विषयों की पुस्तकों द्वारा अपने ज्ञान को समृद्ध कर सके। यूनानी शोकांतिओं से लेकर युरोप के अन्य श्रेष्ठ नाटकों का अध्ययन भी उन्होंने किया। इस पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही वे आधुनिक हिन्दी नाटक को नयी दिशा और नूतन-दृष्टि प्रदान करने में सफल रहें। इब्सन और शॉ के नाटकों का प्रभाव इनपर अधिक रहा। विजयेंद्र स्नातक अपनी भूमिका में लिखते है "अपनी मौलिक प्रतिभा से नाटक लिखने की प्रेरणा यद्यपि प्रसादजी में भी थी किन्तु सामायिक जीवन के प्रति उनकी दृष्टि गहरी नहीं पैठ सकी थी जितनी मिश्रजी की। सामाजिक समस्याओं के अंकन में मिश्रजी ने तो शैली अपनाई उसे प्रारम्भिक आलोचकों ने इब्सन और बर्नाड शा का अनुकरण सिद्ध करने का प्रयास किया है।"[1] इस तरह भावुक कवि एक समस्या नाटककार

हो गये। इन नाटकों की प्रेरणा के बारे में स्वयं मिश्रजी ने कहा है - समस्या - नाटकों की रचना विवशता की देन है।

इस प्रकार एकांकी क्षेत्र में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की। महाभारत के 'कर्म' पर महाकाव्य की रचना भी आरंभ की। किंतु महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् वे उस काव्य की एक पंक्ति भी न लिख सके, मानो उनकी प्रेरणा का स्त्रोत ही सूख गया हो। इस रचना को पूरी करने का एवं अन्य कृतियों का निर्माण का प्रयास उनका जारी हैं। हिन्दी नाट्य् साहित्य में भारतीय रसवादी-धारा को प्रतिष्ठापित करने का श्रेय मिश्रजी को है। इस तरह नाटक, एकांकी, काव्य एवं जीवनी के क्षेत्र में इनका योगदान उल्लेखनीय है।

क. <u>व्यक्तित्व</u> :-

आधुनिक युग के नाटक क्षेत्र में समस्या नाटक के प्रणेता लक्ष्मीनारायण मिश्र का व्यक्तित्व बहुमुखी है। नाटकों की भूमिकाओं में इनकी सुन्दर तर्कपूर्ण शैली के दर्शन होते हैं, जिन में इनकी आत्मा के प्रति ईमानदारी दिखाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है, कि इन्होंने सभी विचारों को अनुभूति में आत्मसात कर लिया है। इनके व्यक्तित्व के बारे में कह सकते हैं - आपका व्यक्तित्व प्रबल ही नहीं प्रखर भी है। आपके साहित्य, कला, जीवन-दर्शन आदि के प्रति विचार सर्वथा निर्भ्रान्त और स्पष्ट है। जब बोलते हैं तो अजस्त्र प्रवाह परिपूर्ण झरने की भाँति उनकी वाणी का वेग श्रोता को चमत्कृत कर देता है। आपके प्रबल व्यक्तित्व का आभास इससे भी मिलता है कि आप पाण्डुलिपि लिखकर उसमें परिवर्तन नहीं करते।

इनके व्यक्तित्व में जहाँ मौलिकता, एवं प्रखरता है वहाँ प्रत्येक नवीन विचार को ग्रहण करने की उदारता भी हैं। यही कारण है कि इनके विचारों की अभिव्यक्ति अपने नाटकों में विभिन्न विषय विधा और उद्देश्य को बिना हिचकिचाहट के परिवर्तित किया। वस्तूतः बुद्धि के निकष पर सत्य को परखनेवाला व्यक्ति कभी भी रूढ़िवादी नहीं बन सकता। इसी विडम्बना के शिकार मिश्रजी बन गये। भारतीय संस्कृति के रंग में रंगे हुए मिश्रजी को केवल यथार्थवादी शैली के कारग आचार्य शुक्ल

जैसे विद्वान आलोचक ने विदेशी प्रभाव में देखा इसलिए मिश्रजी को अपना पक्ष नाटकों की भूमिका में प्रस्तुत करना पडा। सन 1958 में इन्हें मान-पत्र भेंट किया गया। इसमें मिश्रजी के बारे में "अंतर्गत की ज्योति से प्रेरित किया 'आँसू की बूँद-बूँद' यह पंक्तियाँ लिखकर इन्हें युगप्रवर्तक प्रतिभा का उचित सम्मान किया गया।

मिश्रजी का व्यक्तित्त्व आधुनिकता एवं प्राचीनता, भारतीय तथा विदेशी तत्त्वों से बना हुआ है। इस बारे में कमलेशजी लिखते हैं - "भारतीयता उनका प्राण है पर रूढिवादिता के वे घोर शत्रु हैं। उनकी भारतीयता की अपनी मौलिक व्याख्या है। जिसमें वे अपने ढंग से युग की उस समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव मानते हैं जिनके लिए हम पाश्चात्य संस्कृति की ओर देखते हैं। स्पष्टता उनका सबसे बडा गुण है। उनके तर्क अकाट्य होते हैं और उनके पीछे पर्याप्त चिंतन और मनन की शक्ति रहती है।"[2] अतः भारतीय आदर्श एवं साहित्य और संस्कृति के प्रति मिश्रजी की अगाध श्रद्धा रही है। इस भारतीय संस्कृति के प्रति जनमानस की उदासीनता को देखकर उन्होंने अपने साहित्य में भारतीय दृष्टिकोण को अपनाया। भारतीय संस्कृति के वे उन्नायक रचयिता हैं। अपने साहित्य में भारतीय मान्यताओं और जीवन दर्शन को स्थापित करने का प्रयास किया है। "वे भारतीय संस्कृति के पोषक रहे हैं। उन्होंने विधवा विवाह को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। मिश्रजी ने अपनी नाट्य् कला को एक नवीन रूप प्रदान किया जिसमें भारतीय गौरव के साथ योरोपीय विकसित नाट्य् पद्धति का अपूर्ण सम्मिश्रण मिलता है। मिश्रजी बौद्धिक विवेचना में सतत प्रयानशील रहते हुये भी भाव वैभव एवं कल्पना से पीछा न छुडा सके।"[3]

इस प्रकार मिश्रजी अगाध पांडित्य तथा प्रचंड प्रतिभा की एक ज्योत है। इनमें कवित्त्व, तर्कशक्ति का मणिकांचन योग है। एक विख्यात रचयिता एवं व्याख्याता के रूप में मिश्रजी प्रविष्ठ हैं। इनके वाणी में ओज, पांडित्य का विवेक, कवि की क्रांतिदर्शिता, मर्मस्पर्शिता और तर्क की कला टपकती है। इसी ने उन्हें अजेय वक्ता बनाया और इनकी रचनाओं की अद्भुत शक्ति प्रदान की। मौलिकता एवं राष्ट्रीयता के साथ नैसर्गिक चेतना भी उनमें दिखाई देती है। अतः मिश्र के प्राचीन संस्कार एवं उच्च शिक्षा प्रणाली के प्रभाव में संघर्ष स्वाभाविक है। भारतीय

संस्कृति का स्वर्गिय चित्र इनके नाट्य-साहित्य की सबसे बड़ी देन है।

समस्या नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र :-

आधुनिक हिन्दी नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्रजो का अग्रिम स्थान है। आधुनिक हिन्दी नाटक को विकास की नई दिशा और नूतन-दृष्टि प्रदान करने का श्रेय आपका है। आपने जिस समय नाटक क्षेत्र में पदार्पण किया, हिन्दी नाटक जयशंकर प्रसाद की बहुमुखी प्रतिभा से आलोकित था। परंतु प्रसादजी इतिहास और पुराण की गोरव गाथाओं को वाणी प्रदान करने में जितने सफल हुए उतने जीवन के सम-सामायिक भावबोध को चित्रित करने में न हो सके। इस बारें में डा·रामकुमार गुप्त लिखते हैं - "पं·लक्ष्मीनारायण मिश्र के आगमन से हिन्दी नाटक के इन अभावों की पूर्ति हुई और नाटक सम-सामायिक समाज की समस्याओं के विश्लेषण का साधन हो चला। उन्होंने प्रसाद की आदर्शवादी नाट्य-शाला से हटकर यथार्थ की भूमि पर संचरण किया। सामाजिक धरातल पर समस्याओं को स्वीकार कर मानव आत्मा की चिरन्तन जिज्ञासा अंकित करने का स्तुत्य प्रयास किया।"[4]

नाट्य के प्रयोजन के बारें में लक्ष्मीनारायण मिश्र कहते हैं - "कला की सार्थकता इंद्रियों को सुख देने में नहीं - मनुष्य के भीतर पश्चात्ताप पैदा करने में है - अगर मेरा वह नाटक किसी भी व्यक्ति के भीतर पश्चात्ताप पैदा कर सकेगा, तो मैं समझूँगा कि मेरा उद्देश्य पूरा हो गया और यह अवश्य होगा।"[5]

हिन्दी साहित्य में वर्तमान समाज की ज्वलंत समस्याओं के आधार पर नाटक लिखने का प्रथम श्रेय लक्ष्मीनारायण मिश्र को है। यदि इनके पूर्ववर्ती नाटककारों ने नयी शैली में सम-सामायिक जीवन की विषम परिस्थितियों का दिग्दर्शन अपनी रचनाओ में कराया, किंतु वह नवीन विचार पद्धति और कला कुशलता इनमें दिखाई नहीं पडती जो पाश्चात्य समस्या नाटककारों तथा मिश्रजी और उनके परवर्ती नाटककारों में मिलती हैं। हिन्दी नाट्य क्षेत्र के इस धारा के प्रवर्तक लक्ष्मीनारायण मिश्र ही हैं। डा·मोहन अवस्थी लिखते हैं - "मिश्रजी के नाटकों में उनका गंभीर अध्ययन, उनकी साधार सृजनशील कल्पना तथा ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि का पता चलता है। इन

नाटकों में उन्होंने पाश्चात्य बुद्धिवाद तथा यथार्थ के आज की भारतीय संस्कृति को वरण, जीवनधारा बनाकर प्रवाहित कर दिया है। उनके नाटकों में गीत, स्वगत, कथन, आदि का अभाव है। अस्वाभाविकता का परिहार करते हुए उन्होंने भारतीय संस्कृति की युक्ति-युक्त व्याख्या की है। इन नाटकों की सामग्री उपस्थापन तथा शिल्प सभी दृष्टियों से मिश्रजी प्रसादजी के बाद सर्वश्रेष्ठ नाटककार ठहरते हैं।"[6]

मिश्रजी ने मनोवैज्ञानिक, सामाजिक नाटक, आधुनिक युग की सेक्स-सम्बंधी समस्या नाटक तथा पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटक आदि प्रकार की रचनाएँ की हैं। बँगाल के प्रमुख नाटककार द्विजेंद्रलाल की मिथ्या भावुकता एवं प्रसाद के सौंदर्यवाद एवं आदर्शवाद का विरोध कर सबसे पहले बौद्धिकता का प्रतिपादन मिश्रजी ने ही हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में किया। इब्सन तथा शॉ का प्रभाव होने से ही उनके समस्या नाटकों का विकसित तथा प्रौढ रूप पाया जाता है। इस पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव होने से ही मिश्रजी ने समाज की नवीन जीवन सम्बंधी समस्याओं को विशाल रूप देने का अधिकाधिक प्रयास किया है। हिन्दी नाटकों में एक नवीन विचारपद्धति की प्रणाली इनके द्वारा ही प्रकट हुई, जिनमें वर्तमान की समस्याओं को सुलझाने का अद्भुत प्रयास मिलता है। वर्तमान युग की नयी चेतना और समस्या की अभिव्यक्ति इनके नाटकों में मिलती है। इनकी नाट्य-शिल्पविधि भावुक न होकर बुद्धिवादी के रूप में प्रस्तुत है। मिश्रजी बुद्धिवादी कलाकार हैं। उन्होंने बुद्धिवाद पर अपने नाटकों का निर्माण किया है। समाज और व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। इनके नाटकों का उद्देश्य ही बुद्धिवादी का प्रचार करना है। यही कारण है कि उनके अधिकांश पात्र कर्म की अपेक्षा बौद्धिक वाद-विवाद या अधिक चिन्तन ही करते हैं। इनके पात्रों के बारें में श्री· नलिन लिखते हैं - "श्री·मिश्रजी के नाटक के चरित्र यथार्थ जीवन के चित्र हैं। वे मनोवैज्ञानिक भँवर में पडे जीव हैं। उसमें रंग मिलेंगे - पर उनमें बुद्धि की अपेक्षा हृदय की धडकन कम पाई जायगी।"[7] अतः इनके नाटकों में बुद्धिवाद परम्परा में मिश्रजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे युग परिवर्तन के साथ चलना पसंद करते हैं। मिथ्या भावुकता तथा रोमांस की ओर से ध्यान हटाकर स्वतंत्र व्यक्तिगत साधन की ओर ध्यान देते हैं। मिश्रजी के बारे में

सत्येंद्र तनेजा लिखते हैं - "उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से उत्पन्न वैयक्तिक समस्याओं का चित्रण किया। वे जीवन और जनन को बौद्धिक दृष्टि से देखना चाहते हैं। इस प्रकार मिश्र हिन्दी के युगांतकारी नाटककार हैं। उन्हें इस दिशा में प्रवृत्त होने की प्रेरणा राय से मिली परंतु प्रतिक्रियात्मक रूप से।"[8]

अतः मिश्रजी ने अपने नाटकों में एवं पाश्चात्य नाट्य-कला की मान्यताओं का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत किया है। फिर भी मिश्रजी प्रसाद की तरह भारतीयता की ओर झुके हुएँ प्रतीत होते हैं। पश्चिमी बुद्धिवादी विचारधारा का प्रभाव अधिक होने से इनके नाटकों की समस्याएँ बौद्धिक व्यक्ति की समस्याएँ हैं। व्यक्ति अंतर में वेदना और तडप का अनुभव करता है, किंतु अपने संस्कारों को नहीं छोड सकता। इसी तरह मिश्रजी भारतीय संस्कारों को छोड नहीं सके। एक ओर वे बौद्धिकता की दुहाई देते हैं तो दूसरी ओर विवाह प्रथा तथा जन्म-जन्मांतर के सिद्धांत को छोड न सके। इस बारे में डा·ओझा लिखते हैं - "सह शिक्षा के कारण युवक-युवतियों में जो विवाह की नई समस्या खडी हुई थी, उसकी ओर सबसे पैनी दृष्टि से ध्यान देनेवाले मिश्रजी हैं। यद्यपि वे पश्चिमी यथार्थवाद से प्रभावित होकर इस क्षेत्र में अवतरित हुये थे, तथापि अपने संस्कारगत आदर्शवाद का वे सर्वथा परित्याग न कर सके। रूढ़िवाद का विरोध करते हुए भी वे रूढ़िवादी हो गए। राम और सीता, दुष्यंत-शकुन्तला, नल-दमयंती, अज और इन्दुमती के आदर्श प्रेम को विस्मृत न कर सके।"[9] इसलिए बहुत से आलोचक तो इन्हें सच्चे अर्थ में समस्या नाटककार के रूप में अस्वीकार करते हैं। क्योंकि इन्होंने एक ओर बुद्धिवाद की व्याख्या की हैं तो दूसरी ओर स्वयं को भारतीय परम्परा का नाटककार मानते हैं। जीवन की समस्त समस्याओं का हल वे बुद्धिवाद के धरातल पर करना चाहते हैं। परंतु एक अजीब रोमानी भावुकता उनके पात्रों को घेर लेती है। उनके नाटकों में रोमांस और भावुकता का मोह न छोड सके।

डा·वासुदेवसिंह लिखते हैं - "उन्होंने जिन समस्याओं को उठाया हैं, उनका वे सम्यक समाधान नहीं प्रस्तुत कर सके हैं। इसीलिए नंददुलारे वाजपेयी ने उन्हें समस्या नाटककार न मानकर पुनरुत्थानवादी नाटककार कहा है।"[10] इस तरह

कलाकार के रूप में मिश्रजी की कला यथार्थोन्मुख है, किंतु विचारों के क्षेत्र में वे आदर्शवादी परम्परावादी हैं। जब विवेक, अनुभूति और विचार का धरातल सदृढ होता है तब परम्परा लेखक को विचलित नहीं कर सकती। इनकी नाट्य-रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि एक ओर मिश्रजी की प्रयोगवादी दृष्टि रही है तो दूसरी ओर परवर्ती नाटककारों हेतु परम्परागत रूप में नाट्य-भूमि के अनुरूप नवीन प्रयोगों को अपनाया है।

अतः मिश्र नई शैली, नई विचारधारा के समस्या नाटकों के प्रवर्तक हैं। समाज, व्यक्ति तथा सेक्स समस्याओं को सुलझाकर एक नव दिशा की ओर अग्रेसर किया है। इन्होंने सामाजिक नाटक को शिल्पगत सार पर समस्या नाटक की प्रवृत्ति प्रदान की है। काम, प्रेम तथा विवाह की अनेक समस्याओं का नवीन परिप्रेक्ष्य एवं संदर्भ में परिक्षण कर एक को स्वयं ही भूमि प्रदान कर वर्तमान नाटककारों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए मिश्रजी लिखते हैं - "मैंने जो कुछ अनुभव किया है, देखा है, उसे इस नाटक के रूप में तुम्हारे सामने रख देता हूँ, यथार्थ ज्यों का त्यों इमानदारी के साथ।"[11]

इस प्रकार लक्ष्मीनारायण मिश्र आधुनिक युगके सर्वाधिक सजग, यथार्थवादी और प्रगतिशील नाटककार हैं। इन्होंने कल्पना, भावुकता और अतिरंजन का बहिष्कार कर मनोवैज्ञानिक समस्या प्रधान नाटकों की रचना कर हिन्दी नाट्य साहित्य को श्रेष्ठ उपलब्धि प्रदान की।

मिश्रजी की नाटकों की विशेषताएँ :-

लक्ष्मीनारायण मिश्र के ख्याति प्राप्त नाटकों की विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं -

अ. **सामाजिकता :-**

मिश्रजी की नाटकों की प्रमुख विशेषता है - "सामाजिकता"। मिश्रजी के प्रत्येक सामाजिक नाटकों के सम-सामायिक जीवन की किसी न किसी समस्या का चित्रण अवश्य होता है। ज्यों-ज्यों मिश्रजी रचना-क्रम की दृष्टि से आगे बढ़ते गये

है, समस्या का स्वरूप राजनीतिक से सामाजिक और सामाजिक से वैयक्तिक होता गया है। व्यक्ति ही वास्तव में शाश्वत सत्य है और व्यक्ति में है नारी विशेष रूप से। भारतीय समाज में सेक्स सम्बधित समस्याओं को सुलझाने के लिए विवाह संस्था का निर्माण किया गया था लेकिन आधुनिक युग में विवाह के कारन ही अनेक समस्याओं का निर्माण हो रहा है। व्यक्ति और समाज का संघर्ष प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इन्होंने सामाजिक मनोविज्ञान को महत्त्व पूर्ण नाट्य् साहित्य का सृजन किया हैं जिनमें विवाह और प्रेम की समस्या द्वारा सेक्स जनित समस्याओं और विचारों को प्रस्तुत किया है।

आ· **राजनीतिक चिन्तन :-**

रचना क्रम के अनुसार मिश्रजी के नाटकों की समस्या का स्वरूप राजनीतिक से सामाजिक और सामाजिक से वैयक्तिक होता गया है।

इ· **साहित्यिक चिन्तन :-**

पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव मिश्रजी पर अधिक रहा। उन्होंने जीवन की मिथ्या सजावट और भावुकता का त्याग करते हुए वास्तविकता को प्रत्यक्ष रखा है।

ई· **दार्शनिक चिन्तन :-**

मिश्रजी नियतिवादी नहीं है। उनका मत है - "मनुष्य को स्वतंत्र और आत्मविभोर होकर अपना कार्य करना चाहिए। मनुष्य को परिस्थितियों का दास न बनकर उन पर विजय प्राप्त करना चाहिए। इसी में उसका चरम विकास हो सकता है। आज के युग में पाप और पुण्य की परिभाषा करना भी अत्यंत कठिण कार्य है। एक स्थल पर जो सत्य है वही दूसरे स्थल पर असत्य।"[12]

उ· **भारतीय संस्कृति में अनन्य निष्ठा :-**

मिश्रजी ने समस्या नाटकों के साथ सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक नाटक लिखें। इनमें भारतीय संस्कृति के गौरवता के दर्शन होते हैं। आज की नारी यदि पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित पढ़ी-लिखी, परम बुद्धिवादी हो तो भी उनकी दृष्टि

में वह एक उसे भारतीय संस्कृति के आदर्श में देखना चाहते हैं।

ऊ· **बौद्धिकता : -**

मिश्रजी बुद्धिवादी कलाकार हैं। उन्होंने अपने नाटकों द्वारा बुद्धिवाद के धरातल पर समाज और व्यक्ति की विविध समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इनका बुद्धिवाद एक तीक्ष्ण सत्य है जो अपनी आत्मा में यथार्थवादी होकर जीवन में नवीनता का स्फूरण करता है।

ए· **यथार्थवादी प्रवृत्ति : -**

मिश्रजीने अपने नाटकों में बुद्धि के माध्यम से यथार्थ का चित्रण किया है। समाज के कटु यथार्थ की ओर उन्मुख होना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

ऐ· **चिरन्तन तत्त्व की प्रधानता : -**

मिश्रजी ने अपने नाटकों में चिरन्तन तत्त्व को अधिक महत्त्व दिया है। वे जीवन में विरोधी प्रवृत्तियों के द्वंद्वो को अनिवार्य समझते हैं। मनुष्यता के सिद्धांत और आदर्शो की हत्या कर भविष्य को प्रकाशमान नहीं किया जा सकता। मानवता और आदर्श की इसी भावना से अनुप्रेरित होकर उनका मत है इसके लिये तो मनुष्य की सारी जिन्दगी को प्रकाशित करना पडेगा। भविष्य की कला और साहित्य का यही उद्देश्य होगा। नारी समस्या के रूप में चिरन्तन तत्त्व को मिश्रजी ने प्रकट किया है। मिश्रजी के नाटकों के बारे में डा·ओझा लिखते हैं - "नर नारी के प्रेम और आकर्षण के साथ ही साथ हमारे जीवन की जो अन्य समस्याएँ नाटकों में आयी हैं वे भारतीयता को और भी अधिक चमका देती है। नारी चाहें जिस रूप में पहली बार जिस पुरूष के राग का माध्यम बनती है, उसे जन्मभर उसीके साथ रहना है। इस कठोर नियम और मान्यता में उसके निजी प्रेम को हटना ही पडता है।[13] इस तरह मिश्रजी ने चिरन्तन प्रेम का महत्त्व प्रतिपादन किया है।

मिश्रजी के नाटय्-साहित्य का परिचय :-

लक्ष्मीनारायण मिश्र वर्तमान काल के अत्यंत सफल और ख्याति प्राप्त नाटककार हैं। सर्व प्रथम समस्या नाटककार के रूप में इनकी हिन्दी नाटय्-साहित्य को महान

देन है। इन्होंने सांस्कृतिक, पौराणिक, समस्यात्मक एवं जीवनी- मूलक नाटकों की रचना की। "आधुनिक जीवन और जगत की खरी और स्पष्ट आलोचना ही उनके नाटकों की मूल भित्ति है। उनमें न कल्पना की अतिरंजना है, न भावुकता का अनुरोध और न रोमांस का अस्वाभाविक आकर्षण। उनमें है जीवन का कटू और तीव्र सत्य, वेदना मिश्रित कचोर तथा समाज और उसकी रूढ़ियों के प्रति एक मार्मिक व्यंग्य।"[14] इनके नाटकों का स्वरूप पाश्चात्य है किंतु आत्मा भारतीय है। "मिश्रजी ने पाश्चात्य नाट्य्-कला, बुद्धिवाद और यथार्थवाद का अनुकरण करते हुए भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और परम्परा के प्रति आस्था व्यक्त की है।"[15]

मिश्रजी के नाटकों का प्रकाशन तथा रचना काल निम्न प्रकार से हैं।

		प्रकाशन तिथि
1·	अशोक	सन् 1927
2·	सन्यासी	सन् 1929
3·	राक्षस का मंदिर	सन् 1932
4·	मुक्ति का रहस्य	सन् 1932
5·	राजयोग	सन् 1934
6·	सिंदूर की होली	सन् 1934
7·	आधी रात	सन् 1937
8·	नारद की वीणा	सन् 1946
9·	गरूडध्वज	सन् 1946
10·	दशाश्वमेघ	सन् 1949
11·	वत्सराज	सन् 1950
12·	वितस्ता की लहरें	सन् 1952
13·	चक्रव्यूह	सन् 1953
14·	कवि भारतेन्दु	सन् 1955
15·	वैशाली में बसन्त	सन् 1955
16·	जगद्गुरू	सन् 1958

17.	मृत्युंजय	सन् 1958
18.	धरती का हृदय	सन् 1962
19.	अपराजित	सन् 1963
20.	चित्रकूट	सन् 1963

सर्वश्री भारतभूषण चड्ढा, शशिशेखर नैथानी, बब्बन त्रिपाठी, गिरीश रस्तोगी और सावित्री स्वरूप आदि विद्वानों में बिम्ब के आधार पर मिश्रजी के नाटकों का वर्गीकरण चार रूपों में निम्न प्रकार से किया है -

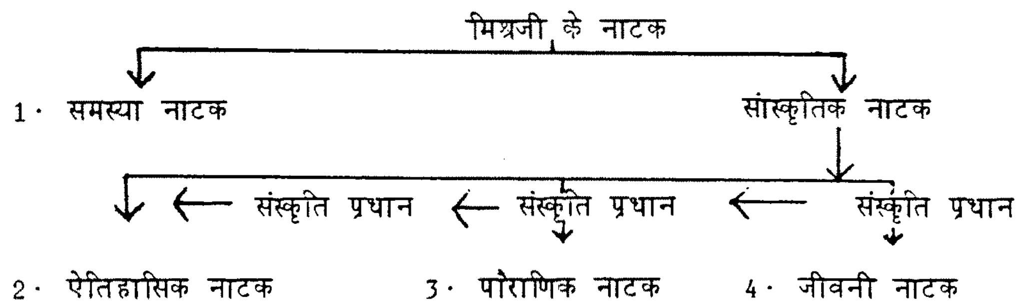

1. **समस्या नाटक** : - संन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, सिंदूर की होली, राजयोग, आधी रात।

2. **ऐतिहासिक नाटक** - अशोक, नारद की वीणा, गरूडध्वज, वत्सराज, दशाश्वमेघ, वितस्ता की लहरें, वैशाली में बसन्त, धरती का हृदय, वीरशंख।

3. **पौराणिक नाटक** : - चक्रव्यूह, अपराजित, चित्रकूट

4. **जीवनी नाटक** : - कवि भारतेन्दु, मृत्युंजय, जगद्गुरु

संन्यासी : -

सन् 1927 में लिखा मिश्रजी का 'संन्यासी' प्रथम समस्या नाटक है। तीन अंकों में लिखा गया इस नाटक की मूल समस्या काम की है, जिसे मिश्रजी ने चिरंतन नारीत्व की समस्या कहा है। मालती और विश्वकांत एक दूसरे के प्रेम

में आबद्ध हैं। प्राध्यापक रमा शंकर भी मालती से प्रेम करता हैं। दूसरी ओर प्राध्यापक दीनानाथ किरणमयी युवती से विवाह कर लेते हैं, जब कि किरणमयी विवाहपूर्व मुरलीधर की प्रेमिका है। मोती, मालती के पिता उमानाथ की अवैध्य संतान है।

विश्वकांत का प्रेम रोमांटिक नहीं है। वह पुस्तकों की दुनिया का खिलाडी है। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु विदेश चला जाता है तब उसे मालती का विवाह किसी अन्य व्यक्ति से होने वाला है यह समाचार मिलता है, तब वह एक निर्मम पत्र भेजता है। मालती उसे पढ़कर क्षुब्ध होती है और रमाशंकर से विवाह कर लेती है। अतः विश्वकांत देशसेवा का कार्य छोड देता है और दोनों अपने जीवन में असफल होते हैं।

दीनानाथ और किरणमयी का अनमेल विवाह होने से किरणमयी विवाह के बाद मुरलीधर से संपर्क रखना चाहती है पर मुरलीधर के संयम के कारण नहीं रख सकती। अपनी राष्ट्रीयता और क्रांतिदर्शिता के कारण मुरलीधर जेल जाता है। और विश्वकांत को महान मानकर उसके लिए अपनी जान खो बैठता है। इस नाटक का विश्वकांत ही सन्यासी हो जाता है। और अन्य सहायक पात्र है।

इस तरह इस में रोमांटिक प्रेम की समस्या चित्रित हुयी है। "नाटककार के मतानुसार उनका प्रेम रोमांटिक प्रेमियों के हृदय में इतनी व्याकुलता रहती है कि एक की अनुपस्थिति दूसरे की मौत के समान बन जाती है। वे सदैव एक दूसरे के लिए पागल से रहते हैं। उनकी व्याकुलता का कारण उनकी वासना होती है। इसलिए इस प्रेम में स्थायित्त्व नहीं होता। प्रारंभ में जो आवेग और चाह होती, जवानी के उपभोग के अनंतर यह समाप्त हो जाती है।"[16] किरणमयी और दीनानाथ की अनमेल विवाह की समस्या प्रस्तुत की है। यदि किरणमयी का विवाह किसी उचित व्यक्ति से हो जाता तो, वह अपने जीवन में सफल होती। इस नाटक की ज्वलंत समस्या है - अवैध्य संतान की समस्या। मोती उमानाथ का अवैध्य संतान होने से सामाजिक दोषी है।

विश्वकांत ही सन्यासी है, जो अपने प्रेम से उपर उठने के लिए और

उसे सामाजिक, अहं का रूप देने के लिए सन्यासी का रूप ग्रहण करता है। यह मानव की चेतना की विजय है, जो अध्यात्मिक अर्थो में भौतिक उपकरणों पर भारतीय संस्कृति की विजय की प्रतीक है। इस तरह मिश्रजी ने सामाजिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण कर उनका बौद्धिक समाधान व्यक्त किया है।

2· **राक्षस का मंदीर** : -

सन् 1932 में लिखा हुआ मिश्रजी का दूसरा समस्या नाटक "राक्षस का मंदीर" है। यह नाटक तीन अंकों में लिखा हुआ अधिक पात्रों की संख्या में चित्रित किया गया है।

नाटक की कथावस्तु अशगरी वेश्या से संबंधित रामलाल, मुनीश्वर, और रघुनाथ की कथा है। रघुनाथ अशगरी की उपेक्षा करने से रामलाल अशगरी को अपनाकर रघुनाथ को घर से बाहर निकाल देता है। इन दोनों के बीच मुनीश्वर आता है तब अशगरी उसे अपनी देह सौंप देती है। रामलाल इस कृत्य को देखकर रोक पाने में असमर्थ हो जाता है। इसी बीच मुनीश्वर "मातृमंदीर" की स्थापना का आडंबर रचता है और रामलाल एवं रघुनाथ की सारी संपत्ति अपने अधिन कर लेता है। रामलाल का सारा धन अशगरी के नाम होने पर वह मातृमंदीर को अपने अधिकार में लेती है और मुनीश्वर को अलग कर देती है।

नाटक मे अन्य उपकथाएँ भी जुड़ी हुई हैं। रघुनाथ और ललिता के प्रेम संम्बंध की परिणति अंत में मित्रता में होती है। मुनीश्वर और दुर्गा के वैवाहिक सम्बन्ध आदि के कारण कथावस्तु मे गति आ गई है। गांधीवादी सिद्धांतो के प्रचारकों के रूप में महेश, जगदीश और घनश्याम का चित्रण हुआ है। दौलतराम और भवानीदयाल में नवीन और पुरातन विचारों का संघर्ष दिखाया है। इस नाटक में मनुष्य की जिन्दगी को सब ओर से भीतर और बाहर प्रवृत्तियों के चढाव और उतार को दैवी और राक्षसी द्वन्द्व को आशा और निराशा के सम्मिलन को देखने परखने की चेष्टा की है। इसमें मुनीश्वर जैसा राक्षस किसप्रकार राक्षसी वृत्तियों संपन्न एक मानव मंदीर की स्थापना का आडम्बर स्व-समाज की वैध स्वीकृति प्राप्त करने का प्रयास करता है, यह स्पष्ट

किया है। नाटक का लक्ष्य राक्षसी वृत्तियों के चरम का प्रकाशन कर दैवी और राक्षसी वृत्तियों का द्वन्द्व दिखलाकर समाज के वास्तविक रूप से समक्ष रखना है। "इस नाटक में प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व सर्वत्र परिलक्षित है जो आज के शिक्षित समुदाय की सबसे बड़ी समस्या है। "काम का सम्बन्ध केवल तन की भूख से नहीं है, तन के ऊपर जो मन की भूख होती है, उसके तृप्त होने का अशगरी को साधन नहीं मिलता। उससे उसका काम-भाव हाहाकार करता रहता है। "[17] इस नाटक में मानव की असत् वृत्तियों को दबाकर समाज सेवा द्वारा उसे सद्वृत्तियों की ओर प्रेरित किया है।

इसके सिवा ललिता और रघुनाथ के रोमांटिक प्रेम और संयमित प्रेम पर वैवाहिक जीवन की विजय दिखायी गयी है। रघुनाथ और ललिता एक दूसरे की ओर आकर्षित है। ललिता रोमांटिक है, तो रघुनाथ अति संयमी है। दोनों का जीवन दुःखी था लेकिन अंत में वे वास्तविकता को पहचानकर विवाह कर लेते हैं। प्रेम की दोनों सीमाओं का तार्किक विश्लेषण कर विवाह को महत्त्व किया गया है।

3· <u>मुक्ति का रहस्य :-</u>

सन 1932 में लिखा हुआ मिश्रजी का तीसरा समस्या नाटक "मुक्ति का रहस्य" है। तीन अंको में लिखा गया यह एक प्रेम-मूलक समस्या नाटक है। इसमें विवाह-प्रथा का महत्त्व स्थापित किया गया है।

आशादेवी उमाशंकर से प्रेम करती है। उमाशंकर विवाहित होने से आशादेवी उनका प्रेम प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिए वह उमाशंकर की पत्नी को डा·त्रिभुवन की सहायता से विष देती है। डा·त्रिभुवन आशादेवी से प्रेम करता हैं, उसके इस कृत्य का लाभ उठाकर उससे अपनी वासना की पूर्ति कर लेता है, तब आशादेवी उससे घृणा करती हैं, किंतु उसका विरोध नहीं कर पाती। आशा के आत्म-समर्पण भावना से डा·त्रिभुवन में सुधार की भावना उत्पन्न होती है। उमाशंकर को एक आध्यात्मिक चरित्र के रूप में अंकित कर आशा को अपने घर रखते हुये भी कभी उसका दैहिक संपर्क प्राप्त नहीं करता। आशा के लिए समस्तोत्सर्ग की भावना रखता है।

आशा अंत में अपने को उमाशंकर के योग्य नहीं पाती और चारित्रिक हीनता से खिन्न होकर बचा हुआ वही विष प्राशन करती है और डा·त्रिभुवन उसे बचा लेता है। वह उसकी क्षमा माँगता है। डा·त्रिभुवन में परिवर्तन की भावना देखकर आशा उसकी ओर आकर्षित होती है और त्रिभुवन से विवाह का प्रस्ताव करती है। अंत में उमाशंकर उसे क्षमा कर देते है और त्रिभुवन उसे अपनाता है। इसमें उमाशंकर के पुत्र मनोहर के माध्यम से आशा के घात-प्रतिघातों का चित्रण किया है।

इस कथा के साथ बेनी माधव, काशीनाथ, देवीनंदन, मुरारीसिंह और जगर्र के सहयोगी आदि पात्रों की छोटी-मोटी समस्या चित्रित की है। उमाशंकर अपने चरित्र की महानता से आशा और डा ·त्रिभुवन नाथ के सम्बन्धों को स्वीकार कर उन दोनों को जीवन के सामाजिक उपभोग के आनंद को प्राप्त करने हेतु मुक्त कर देता है और स्वयं भी मुक्त हो जाता है। इस प्रकार "मुक्ति का रहस्य" नाटक की समस्या पश्चिम के भौतिक वादी प्रेम से प्रारंभ होकर भारत के आध्यात्मिक त्याग से पर्यवसित हो जाती है। भोगवाद ही बंधन है और उससे ऊपर उठकर त्याग की मुक्ति। इस बारे में मिश्रजी का मत है कि - "नारी को उसी पुरुष की होकर रहना चाहिए जो चाहे जिस परिस्थिति में, उसके जीवन में भा जाता है और उसके शरीर पर अधिकार कर लेता है। मिश्रजी पश्चिम के मुक्त-भोग के आदर्श को स्वीकार नहीं करते। शरीर कोई सौदे की वस्तु नहीं है, जो एक के बाद दूसरे ग्राहक के हाथों सौंपी जाय।"[18] इस तरह नाटककार ने विवाह को महत्त्व दिया है और रोमांस तथा आदर्श की उपेक्षा की है। इस नाटक में रोमानी वृत्ति के धरातल पर प्रेम की समस्या खडी की गई है जिसे सुलझाने का कार्य नाटककार ने भारतीय अध्यात्म की परम्परा और पाश्चात्य यथार्थवादी दृष्टिकोण से किया है।

4· **सिंदूर की होली :-**

सन 1934 में मिश्रजी ने "सिंदूर की होली" चौथे समस्या नाटक की रचना की। उस मसय विधवा विवाह की समस्या विद्यमान थी। इस नाटक का शीर्षक इसके कथानक की आत्मा की ही अभिव्यक्ति है। "सिंदूर की होली" का प्रत्यक्ष संबंध

चंद्रकला और रजनीकांत के वैयक्तिक सम्बंध से है। वह मनोजशंकर से विमुख होकर विवाहित रजनीकांत के प्रति अपनी आत्मा का संपूर्ण वैयक्तिक समर्पण उसके लिए करती है और युवावस्था में बिना यौवन का संसर्ग प्राप्त किये अविवाहित रहते हुए भी बेहोश रजनीकांत के हाथों माँग भरवाकर विधवा हो जाती है। अतः यह उसका वैधव्य समाजबाहय हैं। मनोरमा का वैधव्य विवाहोरान्त का वैधव्य है जो समाज ग्राहय है। विवाह से वैधव्य नहीं मिटेगा, बल्कि तलाक की समस्या का आगमन होगा।

मनोजशंकर पिता की आत्महत्या से पीड़ित है। मुरारीलाल ने उसके पिता की हत्या आठ हजार रूपये के लिए की थी। इस प्रायश्चित के लिए वे मनोजशंकर को उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेजना चाहते हैं और चालिस हजार रूपयों के लिए उनके दारा दूसरी हत्या की जाती है। इस काम में उनका मुंशी माहिरअली का भी सहयोग है। अंत में यह रूपया उनके किसी काम का नहीं आता। सभी उनका साथ छोड देते है। नाटकाकर ने आरंभ से पात्रों को आंतरिक संघर्ष से जूझते हुए दिखाया है और अंत में इनके समस्या का हल बौद्धिक धरातल पर किया है। चिरंतन नारीत्व एवं विधवा विवाह, प्रेम एवं काम की समस्याओं का निरूपण नाटक्कार ने किया है।

5· **राजयोग :-**

सन 1934 में लिखा हुआ मिश्रजी का "राजयोग" यह पाचवाँ समस्या नाटक है। यह नाटक तीन अंको में विभाजित हैं। रतनपुर का राजकुमार शत्रुसूदन की प्रथम पत्नी रहते हुए राज्यसत्ता के बल पर चम्पा से विवाह कर लेते हैं। इसके पहले उनके दिवान रघुवंश का पुत्र नरेंद्र और चम्पा विवाह के बंधन में बंधनेवाले थे, पर ऐसा नहीं हो सका। पाँच वर्ष बीत गये किंतु शत्रुसूदन और चम्पा का जीवन सफल नहीं हो सका। फिर भी शत्रुसूदन अपने इस अपराध को स्वीाकर नहीं करता।

गजराज शत्रुसूदन के यहाँ स्वामी भक्त नौकर है। बीस वर्ष पूर्व ठाकूर पत्नी से उनका अवैध सम्बन्ध होने से चम्पा का जन्म हुआ था। गजराज सदा उदिग्न रहता है कि कही यह राज की बात खुल न जाए। इस कारण वह अविवाहित रह

चुका है। रघुवंश, नरेंद्र, शत्रुसूदन और चम्पा इन लोगों की परेशानियों का कारण खुद को मानकर वह राज्य छोडकर जाना चाहता है। दीवान रघुवंश 60 वर्ष से शत्रुसूदन के यहाँ काम कर रहें हैं। उनका पुत्र नरेंद्र 5 वर्ष से घर से लापता होने सें उन्हें इस पुश्तैनी दीवान पद की फिक्र है।

नाटक के अंत में नरेंद्र राजयोगी के रूप में प्रवेश करता है। गजराज से रहस्य की बातें जान लेता है। शत्रुसूदन को इस बात का पता लग जाने से वह चम्पा का तिरस्कार करते हैं। किंतु बाद में उसे पुनः स्वीकार कर लेते हैं। नरेंद्र को योगी के रूप में देखकर चम्पा को ऐसा लगता है, कि वह अब उसे स्वीकार नहीं करेगा। उसका मन हलका हो जाता है। रघुवंश की दीवान-पद की चिंता मिट जाती है। सभी पात्र भूतकाल को भूलकर वर्तमान को सच मानकर स्वयं का समाधान कर लेते हैं।

इस प्रकार नाटककार ने यह प्रतिपादन किया है कि पिछली बातें मनुष्य भूल जाता है। किंतु वास्तविक ऐसा नहीं होता। यदि ऐसा होता तो चम्पा नरेंद्र को पहले से ही क्यों भूल नहीं पाता गजराज अपने पाप को क्यों नहीं भूल पाता है? इन सभी भेद को यदि अंत में प्रकट किया है, जो मानवता के लिए हितकर होगा। लेकिन इस तरह के पाप को प्रकट करना और उसे पचा लेना अत्यंत दूरूह काम है। इसलिए उमाशंकर सिंह लिखते हैं - "शत्रुसूदन और चम्पा का समझोता अस्वाभाविक और त्रूटिपूर्ण है। यह बुद्धिवाद नहीं भाग्यवाद है।"19 इसमें मिश्रजी ने अपने पात्रों को एक राजसी रूप प्रदान किया हैं। किंतु इसमें निहित समस्या राजकीय न होकर प्रेम की ही समस्या हैं, जिसका सम्बन्ध सामाजिक लांछन और चिरन्तन नारीत्व से है। पुरूष नारी के जीवन की यह समस्या इसमें उभर आयी है।"

नाटककार का उद्देश्य भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं की महत्ता उद्घोषित करने के साथ ही चिरंन्तन नारीत्व की प्रेममूलक समस्या की ओर दृष्टिपात कर उसको सामाजिक स्वीकृति को ही औचित्य प्रदान करता है। क्योंकि उसके अभिमत से उच्छृंखल प्रेम से संयमित प्रेम महत्त्वपूर्ण हैं। वैयक्तिक चेतना सामूहिक चेतना के रूप में परिणित

होकर ही समस्याओं का समाधान कर सकती है।

6. **आधीरात :-**

सन् 1937 में लिखा हुआ मिश्रजी का यह छटा समस्या नाटक है। इसका कथानक प्रकृति में पुरूष के आकर्षण की समस्या से गुंफित है। मायावती एक भारतीय नारी है, जिसकी शिक्षा, संस्कार का निर्माण पाश्चात्य संस्कारों में हुआ है। भारतीय नारी जीवन की सारी मान्यताओं को हवा में उडाकर वह एक ऐसे स्वर्ग का निर्माण करना चाहती है, जिसमें नारी के व्यक्तित्त्व की स्वतंत्रता हो और पुरूष से प्रतिद्वंदिता करने की लालसा उसके मन में थी। इस कल्पना में उसने कई व्यक्तियों से प्रेम किया। प्रेम के संघर्ष में उसके दो प्रेमी एक दूसरे से युद्ध कर अपना विनाश कर लेते हैं। एक मारा जाता है और दूसरे को आजीवन कारावास की सज़ा होती है। नाटककार की दृष्टि से यह पाश्चात्य प्रवृत्ति भारतीय प्रेम की पवित्रता को समाप्त कर देती है।

मायावती सभ्य, सुन्दर नारी होने से एक कल्पनाशील और अनुभूति प्रदत्त साहित्यकार प्रकाशचंद्र उसकी ओर आकर्षित होता है, क्योंकि उसकी पूर्व पत्नी अशिक्षित एवं कुरूप है। मायावती प्रकाशचंद्र से विवाह करके भारतीय नारीत्त्व को ही स्त्रीत्त्व का आदर्श मानती है। "इसी कारण वह प्रकाश को पति के रूप में ग्रहण करने के उपरान्त भी उसे पुरूष के रूप में ग्रहण नहीं करती। इस प्रकार वह स्वयं को सामाजिक दृष्टि और प्राकृतिक व्यभिचार से बचा लेती है। वह नारी समस्या का समाधान वासना और उन्माद की अपेक्षा, भावना और सेवा में समझती हैं।"[20]

राधाचरण और राघवशरण दोनों के माध्यम से मिश्रजी एक नवीन समस्या पुनर्जन्म को वेज्ञानिक सत्य मानते हैं और प्रेम की सत्ता भी स्वीाकर करते हैं। यह मानसिक विकार राघवशरण प्रकाशचंद्र के मस्तिष्क में निर्माण कर देता है। अंत में मायावती आत्महत्या कर लेती है और प्रकाशचंद्र भावावेग तथा कल्पना लोक से यथार्थ के जगत पर आ जाता है और अंत में वह अपनी समस्त रचनाओं को जला देता है तथा मिथ्या जगत से वास्तविक जगत को सत्य मानता है।

इस प्रकार "आधीरात" प्रतीकात्मक दो अर्थों में व्यक्त होता है - एक मानव की वासना के उद्दाम प्रवेग का प्रतीक है और आधीरात में ही जीवन का अंधेरा प्रकाशित होता है। दूसरा अर्थ सभी घटनायें आधीरात के समय की है, जो वातावरण प्रधान हो गया है। इस नाटक का उद्देश्य भावना का परिहास कर प्रेम के वासनात्मक स्वरूप की भयानकता का चित्रण करना है। इसकी नारी-समस्या चिरन्तन-नारीत्व की समस्या है। युग-युगों से नारी पुरुष की आकर्षणमयी रही है और उसकी देह ने पुरूष के भोग को भोजन दिया है। इस प्रकार नाटककार ने बताया है कि "नारी में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जिससे वह त्याग आसानी से कर सके। जिस साधना की अपेक्षा हम नारी से करते हैं अगर वह पुरूष ही करे तो इसमें बुराई क्या है? सचाई यह है कि पुरूष सदेव संयम से कतराता रहा है और अपनी उच्छृंखलता का सारा दोष नारी के माथे मढ़कर अपने को सभ्य और महान कहता रहा है।"[21]

इस तरह "आधीरात" में राघवशरण एवं प्रकाशचंद्र के रूप में दानवी और देवी प्रवृत्तियों का अंतर्द्वंद चित्रित किया है। मायावती आधुनिक युग से विद्रोह करके भारतीय प्राचीनता को अंगीकार करते हुए भारतीय आदर्शों को अपनाती है।

7. **अशोक :-**

"अशोक" मिश्रजी का पहला ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटक है। सन 1926 में लिखा उनकी विद्यार्थी जीवन की रचना है। इसका कथानक सम्राट अशोक के जीवनवृत्त से लेकर हैं। इन में भारतीय इतिहास की प्रख्यात कथा, एव अशोककालीन प्रमुख घटनाओं का विस्तार है। इसमें तत्कालीन ब्राह्मन - बौद्ध संघर्ष को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन काल के इतिहास से अनभिज्ञ होने से नाटककार ने अशोक को धर्मनाथ के हाथ का खिलौना, कायर तथा धोखेबाज बनाकर विश्वाविख्यात सम्राट के साथ अन्याय किया गया है। अन्य चरित्रों को उँचा उठाया गया है। धर्मनाथ ब्राह्मय के चित्रण में चाणक्य की नकल की है। अशोक के महान मानसिक परिवर्तत का उन्मेष इस में दिखलाया है। सामान्य गीत योजना में बद्ध यह तीन अंकी नाटक है।

8. **नारद की वीणा :-**

सन् 1946 में प्रकाशित "नारद की वीणा" मिश्रजी का प्रागैतिहासिक संस्कृति रचना है। इस नाटक में प्रायः चार हजार वर्षो का प्रागैतिहासिक काल, कथानक, प्रवृत्तियाँ और समस्याओं का नियोजन हुआ है। यह नाटक आर्य-आर्येतर के संघर्ष और समन्वय पर आधारित है। इसमें आर्य सभ्यता को हीन एवं अनार्थ सभ्यता को श्रेष्ठ बताया है। मिश्रजी ने बताया है कि पश्चिम की ओर से भारत में आनेवाले श्वेत यायावर आर्यो ने शारीरिक शक्ति के बल पर यहाँ के स्थायिक निवासियों पर विजय तो प्राप्त की किन्तु सभ्यता और संस्कृति में वे अनार्य सभ्यता से पराजित हो गए और उन्हें भी अनार्य की संस्कृति अपनानी पडी। वे निवासी आर्यों के गुरू थे। आर्य-अनार्य संस्कृति के समन्वय से मिश्रजी ने सिद्व किया है कि हमारी वर्तमान संस्कृति वास्तव में यहाँ के मूल निवासियों और आर्यो की सभ्यता व संस्कृति का ही समन्वित रूप है।

"नारद की वीणा" का कथानक तीन अंको में एवं गंभीर वर्णन शेली में लिखा गया है। इस नाटक पर राहुल सांकृत्यायन की अनुपम प्रस्तुत "वोल्गा से गंगा" का प्रभाव है। इस की रचना पुराणों के आधार पर कल्पनाश्रित है।

9. **गरूडध्वज् : -**

सन 1946 में प्रकाशित यह संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। इसमें पहली शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी तक की सामाजिक स्थिति का सजीव अंकन है। भारतीय संस्कृति के निर्माता कालिदास और विक्रमादित्य की श्री एवं शक्ति का अभिव्यक्ति इस नाटक में हुई है। शृग वंश के ऐतिहासिक वातावरण तथा सांस्कृतिक राजनैतिक जीवन का परिचय इसमें मिलता है। इसमें शृंग वंश का आरंभ एवं समाप्ति और मालव साम्राज्य की प्रतिष्ठा का चित्रण है। नाटककार ने भागवत धर्म का पतन बताते हुए संस्कृतिक एवं राष्ट्रीय उत्त्कर्ष को व्यक्त किया है। अभिनेयता की दृष्टि से असफल तथा ऐतिहासिक दृष्टि से यह सफल नाटक है। इस में भारत की गौरवमयी प्राचीन संस्कृति राष्ट्रीय उत्त्कर्ष और एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण का स्वर मुखरित हुआ है।

आधुनिक यथार्थवादी शैली में लिखा गया यह तीन अंकी नाटक है। गीतों की रचना नहीं है। इस में नारी समस्या एवं धार्मिक मतवाद को प्रस्तुत किया गया है। नारी के प्रति मिश्रजी की सहानुभूति व्यक्त हुई हैं।

10· **वत्सराज :-**

सन 1949 में लिखा हुआ यह मिश्रजी का संस्कृतिप्रधान-ऐतिहासिक रचना है। नाटक में रूप और कला के धनी वत्सराज उदयन का चरित्र मिश्रजी ने "स्वप्न वासवदत्ता", "प्रतिज्ञा यौगंधरायण" और "कथासरित सागर" के आधार पर किया है। उदयन की कथा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के इन आदर्श का स्वरूप स्पष्ट होता है। यूनानी सभ्यता, तथा बौद्ध धर्म की आलोचना कर भारतीय जीवन-दर्शन को सर्वोत्तम माना है। वत्सराज के चरित्र में तप और भोग का समन्वित रूप स्पष्ट करते हुए भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल एवं आदर्श रूप निखर आया है। उदयन के राजा तथा विरागी रूप का परिचय इसमें मिलता है। पात्रों के चारित्रिक विकास एवं अभिनेयता की दृष्टि से सफल नाटक है।

11· **दशाश्वमेघ :-**

सन 1950 में प्रकाशित यह संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। 3-4 शताब्दी के भारशिवनागों के इतिहास से सम्बंधित है। इस वंश में जन्में वीरसेन नामक निर्भिक, साहसी एवं योद्धा के शौर्य की कहानी इसमें है। वीरसेन कुषाण साम्राज्य को चुनौती देकर देश स्वतंत्र का स्वप्न देखता है। नाटक में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक वातावरण का पर्याप्त रूप में अंकन हुआ है। काशी का दशाश्वमेघ घाट वीरसेन की गौरवगाथा है। इसमें पात्रों का अधिकता एवं गीतों का अभाव है। ऐतिहासिक नाटक के रूप में सफल नाटक है।

11· **वितस्ता की लहरें :-**

सन 1952 में प्रकाशित यह सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा का नाटक है। इतिहास प्रसिद्ध सिकंदर और पुरू के युद्ध की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए

मिश्रजी ने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण किया है। इस नाटक का आधार वितस्ता के तट पर यवन सेना का पहुँचना, चोरी से वितस्ता पार करना और वीर पुरू के साथ सिकंदर का युद्ध है, जिसके माध्यम से प्राचीन आत्म गौरव, पराक्रम एवं संस्कृति का परिचय मिलता है। यवन संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की विजय दिखलायी है। वितस्ता की तट पर दो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का संघर्ष का वर्णन किया है। अभिनेयता की दृष्टि से सफल नाटक है।

12· **वैशाली में बसन्त :-**

सन 1955 में सांस्कृतिक ऐतिहासिक क्रम में इस नाटक की निर्मिती हुई। इसमें इतिहास प्रसिद्ध वैशाली की नगर वधू का नया रूप ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया गया है। नाटक में अम्ब्रपाली-अजातशत्रु कालीन भारत की सभी परिस्थितियों का वर्णन मिलता है। इसमें भी बौद्ध धर्म की आलोचना कर भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप को प्रस्तुत किया है। दास-प्रथा, गौतम बुद्ध तथा उनके संघो के घातक प्रभाव आदि नाटक में व्यक्त हुए हैं। भारतीय शैली का प्रयोग हुआ है।

13· **धरती का हृदय : -**

सन 1962 में प्रकाशित सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा का यह नाटक है। चंद्रगुप्त की माता के उद्धार एवं यवनों से मातृभूमि के उद्धार की कहानी पर इस नाटक की रचना की है। चाणक्य के ऐतिहासिक स्वरूप को तथा ऐतिहासिक घटनाओं को नये ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रासंगिक कथा के साथ सूच्य कथाएँ अधिक हैं। बौद्ध धर्म की आलोचना राष्ट्रीयता की भावना और जातीय गौरव की अभिव्यक्ति हुई है।

14· **वीर शंख : -**

मिश्रजी का सन 1967 में प्रकाशित सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा का अंतिम नाटक "वीर शंख" है। इस नाटक में हूणों की उस संहार लीला का वर्णन है, जिसमें वक्षु तथा उत्तर-पश्चिम समुद्र से लेकर नर्मदा के तट तक राजवंश उखड

गए, नगर-महानगर, ग्राम-जनपद सब से सब मिट गए। चाणक्य और पुष्यमित्र की कोटि के अवन्ती के आचार्य कालमणि को प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति का गौरवशाली स्वरूप इस नाटक में मिलता है। गीत योजना इस नाटक में की गयी है।

इस तरह नाटककार ने अपने संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटकों धर्म, दर्शन और संस्कृति का वर्णन किया है। इनमें मौर्य, गुप्त तथा शृंग वंश के इतिहास की विश्रृंखलित कडियों को मिलाया गया है। "ये रचनायें भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक पक्ष के मूलभूत तत्वों को बडी सरलताएँ एवं सजीवता से प्रस्तुत करते है।"[22]

15. <u>चक्रव्यूह</u> :-

सन 1953 में छपा हुआ यह सांस्कृतिक पौराणिक नाटक है। महाभारत के पौराणिक आख्यान का अंश का चित्रण नाटक में है। तत्कालीन संस्कृति की झलक इसमें मिलती है। द्रोणाचार्य ने पांडव पक्ष के किसी वीर को नष्ट करने के लिए चक्रव्यूह का निर्माण किया और अभिमन्यू ने अपने पराक्रम से उसका भेदन किया। मिश्रजी ने पौराणिक कथानक को मनोवैज्ञानिक रूप दे दिया है। नाटक में दृश्य परिवर्तन तथा गीतों की योजना की गयी है। पौराणिक रूप में पात्रों को महत्त्व दिया गया है।

16. <u>अपराजित</u> :-

सन 1961 में प्रकाशित यह सांस्कृतिक पौराणिक परम्परा का नाटक है। यह कथा भी महाभारत पर आधारित है। द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा की वीरता का प्रदर्शन सफलतापूर्वक किया है। महाभारत के अछूते रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। नाटक में पांडवों का छल, कपट एवं अन्यायपूर्ण शास्त्र विरुद्ध चरित्र एवं कौरवों का न्यायपूर्ण, शास्त्र सम्मत चरित्र पक्ष उभारा है। नाटक का वातावरण पांडवों के विरुद्ध है, जो काल्पनिक है।

17. <u>चित्रकूट</u> :-

सन 1963 में प्रकाशित सांस्कृतिक पौराणिक नाटक क्रम का यह नाटक

है। इसका कथानक वाल्मीकि की "रामायण" और तुलसी के "मानस" के अयोध्या कांड का है। भरत के ननिहाल से अयोध्या लौटने से राम-भरत मिलन प्रसंग को लिया गया है। नाटक में मातृ-प्रेम का सफल अंकन हुआ है। नाटक की भूमिका में मिश्रजी ने लिखा है -"इस देश में जन्म लेकर जो कवि इस कथा के किसी अंश पर कवि-कर्म न करे तो वह कभी उऋण नहीं हो सकता।"[23] शायद इसलिए मिश्रजी ने यह रचना की होगी। त्रेतायुगीन वातावरण की झलक नाटक में मिलती है। नाटक में लक्ष्मण-जानकी के संवादों में खुलकर मृग मांस खाने, उसकी मेद से दीपक जलाने और उससे ही जानकी द्वारा केश-विन्यास करने के प्रसंगों का वर्णन किया है जिसके कारण लोक-विश्वास एवं लोक निष्ठा को धक्का लगता है। नाटक में दृश्य परिवर्तन तथा गीतयोजना नहीं है।

18. <u>कवि भारतेन्दु</u> : -

सन 1955 मे प्रकाशित मिश्रजी का यह प्रथम संस्कृति प्रधान जीवन नाटक है। यह नाटक भारतेन्दु हरिश्चंद्र के जीवन चरित्र पर आधारित है। भारतेन्दु के चरित्र से मिश्रजी आकर्षित हुये,तभी तो यह रचना लिख पाये। इस नाटक में कवि भारतेन्दु की रईसी वृत्तियों की चर्चा की गयी है। नाटक का कथानक श्रृखंलाबद्ध नहीं है। तीन अंको में लिखा गया है। दृश्य परिवर्तन का विधान नहीं किया है।

19. <u>मृत्युंजय</u> : -

यह संस्कृति प्रधान नाटक है। यह नाटक सन 1958 में प्रकाशित हुआ। इसका कथानक गांधीजी की जीवनी के आधार पर है। नाटक में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनन्य समर्थक तथा लोकनायक के रूप में गांधीजी को प्रस्तुत किया गया है। गांधी विचारधारा की अभिव्यक्ति नाटक में हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की हिन्दुस्थानी भाषा का स्वरूप नाटक में मिलता है। तीन अंक में नाटक लिखा गया है। दृश्य परिवर्तन की योजना नहीं है।

20. <u>जगद्गुरू</u> : -

मिश्रजी का यह अन्तिम संस्कृति प्रधान जीवनी नाटक है। सन 1958

में छपा हुआ है। यह नाटक भगवान शंकर के जीवन चरित्र पर आधारित है। यह आदिशंकराचार्य के गौरवमय व्यक्तित्त्व एवं उनके महान कार्यो की प्रेरणा से यह नाटक लिखा गया है। नाटक में आठवी शतीं की भारत के तत्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। शंकर के महान व्यक्तित्त्व को स्पष्ट किया है। नाटक में सूच्य घटनाओं की अधिकता है। दृश्य परिवर्तन योजना नहीं है।

निष्कर्ष : -

जयशंकर प्रसाद के बाद में आनेवाले लक्ष्मीनारायण मिश्र वर्तमान जगत के एक यथार्थवादी, तथा प्रगतिशील नाटककार हैं। बचपन से ही भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी अटूट आस्था होने से उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति की प्रधानता है। पाश्चात्य साहित्य का इन्हें विस्तृत ज्ञान है। वे पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हुये किंतु उनकी आत्मा सदैव भारतीय रही है। इसी की ही अभिव्यक्ति अनेक नाटकों में मिलती है। मिश्रजी अगाध पांडित्य तथा प्रचंड प्रतिभा की एक ज्योत है। इन्होंने ही सर्वप्रथम हिन्दी नाटकों में बौद्धिकता का प्रतिपादन किया। इब्सन, शॉ तथा फ्रायड का प्रभाव इनपर अधिक रहा है। इनके नाटकों में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य नाट्य-कला की मान्यताओं का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत हुआ है। इनके नाटक यथार्थन्मुख आदर्शवादी हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्याप्रधान, ऐतिहासिक, पौराणिक एवं जीवनी नाटकों की रचना की। समस्या नाटकों में आधुनिक एवं चिरन्तन नारीत्व की समस्या, वैवाहिक समस्या, प्रेम की समस्या तथा यौन समस्या को प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया गया है। संस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करते हुए पराक्रमी राजाओं के आदर्श को व्यक्त किया है। जीवनी-परक नाटकों में कवि भारतेन्दु, गांधीजी तथा शंकर आदि महान व्यक्तियों का चरित्र है। भारतीय संस्कृति, दार्शनिकता, साहित्यिकता, सामाजिकता, बौद्धिकता, यथार्थन्मुख आदर्शवाद तथा चिरन्तन तत्त्व आदि इनकी नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ है।

संदर्भ-सूची

1· साहित्यिक निबंध, राजनाथ शर्मा, पृ·628

2· वही, पृ·627

3· साहित्यिक निबंध, डा·शांतिस्वरूप गुप्त, पृ·366

4· समीक्षा सिद्धांत, डा·कृष्णदेव शर्मा, पृ·303

5· साहित्य परिचय, मदन मोहन शर्मा, पृ·52

6· वही

7· हिन्दी नाटक, डा·बच्चनसिंह, पृ·2

8· हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा·दशरथ ओझा, पृ·145

9· प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक, डा·भगवती प्रसाद शुक्ल, पृ·2

10·हिन्दी नाटक, डा·बच्चनसिंह, पृ·30

11· हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डा·गणपतिचंद्र गुप्त, पृ·870

12· साहित्यिक निबंध, डा·शांतिस्वरूप गुप्त, पृ·271

13· साहित्यिक निबंध, राजनाथ शर्मा, पृ·128

14· हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डा·शिवकुमार शर्मा, पृ·600

15· जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकोंका तुलनात्मक अध्ययन, शशिशेखर नैथानी, पृ·29

16· आधुनिक हिन्दी नाटक और नाट्यकार, डा·रामकुमार गुप्त, पृ·20

17· साहित्यिक निबंध, राजनाथ शर्मा, पृ·130

18· हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, डा·श्रीपती शर्मा, पृ·174

19· प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक, डा·भगवतीप्रसाद शुक्ल, पृ·278-279

20· साहित्यिक निबंध, डा·शांतिस्वरूप गुप्त, पृ·274

21· साहित्यिक निबंध, डा·शांतिस्वरूप गुप्त, पृ·273

22· हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, डा·रमेशचंद्र शर्मा, पृ·424

23· प्रसादोत्तर कालीन नाटक, भूपेंद्र कलसी, पृ·142

24· हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, डा·श्रीपती शर्मा, पृ·243

25. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डा. गुणपतिचंद्र गुप्त, पृ. 884
26. साहित्यिक निबंध, शांतिस्वरूप गुप्त, पृ. 274
27. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, उमेश शास्त्री, पृ. 54
28. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा. हरिचंद्र वर्मा तथा डा. रामनिवास गुप्त, पृ. 473
29. वही, पृ. 476
30. प्रसाद के तीन नाटक, डा. प्रेमनारायण टंडन, पृ. 18
31. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा. हरिचंद्र वर्मा तथा डा. रामनिवास गुप्त, पृ. 586
32. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डा. शिवकुमार शर्मा, पृ. 610
33. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डा. गणपतिचंद्र गुप्त, पृ. 887
34. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डा. शिवकुमार शर्मा, पृ. 615
35. रेडियो नाटक, हरिश्चंद्र खन्ना, पृ. 10
36. साहित्यिक निबंध, शांतिस्वरूप गुप्त, पृ. 275
37. हिन्दी के समस्या नाटक, डा. उमाशंकर सिंह, पृ. 64
38. हिन्दी के समस्या नाटक, डा. विनयकुमार, पृ. 109
39. हिन्दी के समस्या नाटक, डा. मान्धाता ओझा, पृ. 37
40. वही, पृ. 54
41. वही, पृ. 43
42. हिन्दी के समस्या नाटक, डा. उमाशंकर सिंह, पृ. 64
43. आधुनिक हिन्दी नाटक, सुरेशचंद्र शुक्ल, पृ. 33
44. हिन्दी के समस्या नाटक, डा. उमाशंकर सिंह, पृ. 74
45. हिन्दी समस्या नाटक, डा. मान्धता ओझा, पृ. 100
46. हिन्दी के समस्या नाटक, डा. विनयकुमार, पृ. 78
47. समसामायिक हिन्दी नाटकों में चरित्र-सृष्टि, डा. जयदेव तनेजा, पृ. 91